अवधी लोकगीत–

फाग

लेखक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र (अवध) लखनऊ मण्डल
संस्कृति विभाग (उ.प्र.) लखनऊ

फाग : प्रकृति और परम्परा

'फाग' वस्तुतः फागुन में गाया जाने वाला विशेष ऋतुगीत है, जो अवध लोकाञ्चल में 'फगुवा' के नाम से भी जाना जाता है।

फागुन के महीने में जब नशीली हवा के झकोरे चलने लगते हैं तो लगता है कि दिन फगुवाय गए हैं। इस फगुनी बयार का शरीर से स्पर्श होते ही हमारी श्रृंगारिक भावनाएं बन्धन मुक्त हो जाती हैं। सुगन्धित शीतोष्ण पवन के झोंकों के साथ मन मयूर नृत्य कर उठता है। शीत का अन्त होने से यह ऋतु सुहानी लगने लगती है। ऐसे मादक परिवेश में जनमानस आपसी बैर–भाव भूलकर गुनगुनाते लगता है। इन भावों को लोकजीवन फागों द्वारा अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार फाग के विषय में यह कहा जा सकता है कि 'फाग वह लोकगीत है, जो बसंतोत्सव, रंगोत्सव, होलिकोत्सव अथवा फागोत्सव के अवसर पर गाया जाता है।

अवध में गाये जाने वाले फाग में लोक जीवन के विविध रूपों की झाँकी देखने को मिलती है। लोक जीवन धार्मिक भावना से ओत प्रोत होता है। धर्म का मूलाधार है लोक विश्वास। लोक विश्वास की अमूल्य निधि इन लोकगीतों में छिपी हुई है।

अवधी में फाग गीत जन–जीवन के परिचायक हैं। इनका गायन प्रायः मस्ती एवं जोश से परिपूर्ण होता है। ये गीत श्रृंगार विषय प्रधान होते हैं। फाग गीतों की प्रमुख विशेषता यह है कि इनका गायन पुरुष और स्त्रियों द्वारा अलग–अलग होता है। स्त्री गीत को 'होरी' कहा जाता है। इन गीतों की एक अन्य विशेषता यह है कि ये समूह में ही गाये जाते हैं। गायक दल दो भागों में विभाजित होकर इन्हें गाता है। एक को गवैया कहते हैं तो दूसरे को पुरवैया अर्थात् पूरा करने वाला। इन सभी गीतों का गायन प्रायः ओजमौजपूर्ण शैली में होता है।

अवधी में फागों की रचना कब से चल रही है यह कह पाना कठिन है। अवध के कुछ लोक कवियों ने पिछली शती में इसके कुछ संग्रह निकाले थे, किन्तु कोई प्रामाणिक संकलन अब तक नहीं प्रकाशित हो सका है। कुछ गीतों को संकलित करने का प्रयास डॉ. रामबहादुर मिश्र जैसे शोधकर्ताओं ने किया है। जिन फाग साहित्यकारों ने मौलिक रूप से फागों की रचना की, उनमें प्रमुख हैं – ठाकुर शिवप्रसाद सिंह, द्विज छोटकुन, राम लोचन विश्वकर्मा, माताभीख, ठाकुर रमेसर सिंह, जगन्नाथ सिंह, द्विज जगन्नाथ, शिवनारायण त्रिपाठी, चन्द्रमणि पाण्डेय, जगदम्बा शरन पाण्डेय, ठा. मुन्नू सिंह, हरख बहादुर सिंह, श्रीराम प्रताप नारायण आदि। संग्रहकर्ताओं में ठा. जगन्नाथ सिंह, रामलोचन विश्वकर्मा, अमोल सिंह भदौरिया, लालमन आर्य आदि प्रमुख है। राम खेलावन, राम उजागर आदि प्रमुख फाग गीतकार भी क्षेत्र विशेष में अपने गीतों के लिए पहचान बनाये हुए हैं।

कुछ संत कवियों के पदों को भी फाग का रूप दे दिया गया है। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि कवियों की पद शैली में थोड़ा सा परिवर्तन करके इन फागों का गायन होता रहा है। 'कहत कबीर सुनो भई साधो' तो बड़ी ही प्रसिद्ध पँक्ति है। इसी प्रकार 'तुलसीदास या सूरदास 'बलि जाऊँ चरन की' अथवा तुलसीदास 'भजौ भगवानौ' लोकप्रिय उक्तियाँ हैं।

फाग ऋतुगीत हैं, फिर भी इनमें हर विषय से सम्बन्धित गीत मिलते हैं। जैसे धार्मिक, श्रृंगारिक, ऐतिहासिक, पौराणिक आदि। प्रकृति वर्णन से सम्बन्धित फागों में ऋतुओं का विशेष वर्णन मिलता है। इसे 'बारहमासा' कहा जाता है। देवी–देवंताओं–राम, कृष्ण, गणेश, शिव, पार्वती, सरस्वती आदि की गाथाएँ विभिन्न फागों में प्रस्तुत की गयी हैं। रूढ़िवादिता, आडम्बर, एवं समसामयिक समस्याओं का चित्रण भी इन गीतों में देखने को मिलता है। बाल विवाह, बहु विवाह, सती प्रथा, कुलटा कर्म और फूहड़ नारियों के चित्र तो इनमें बहुशः देखने को मिलते हैं।

ये गीत मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में ही प्रचलित हैं। श्रमक्लांत कृषक समुदाय संध्या समय सभी कार्यों से मुक्त होकर जब एकत्र होता है तब ढोलक की थाप पर इनका गायन प्रारम्भ होता है। इधर गृहिणियाँ भी गृह कार्यों से निवृत होकर ढोलक, मंजीरा लेकर सामूहिक रूप से गायन करती हैं। इन गीतों को लिपिबद्ध करना कठिन कार्य है। यद्यपि अवधी के शिष्ट साहित्य में भी कुछ फाग मिलते हैं, किन्तु जो सहजता और सरसता तथा स्वच्छन्दता ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलती है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

इन गीतों में संगीत वाद्य का कोई विशेष विधान नहीं किया जाता, फिर भी कुछ लोक वाद्यों में सहारे इन्हें चित्ताकर्षक बना दिया जाता है। ढोलक, झाँझ, नगाड़ा, डफ, करताल, मंजीरा, झींका आदि के माध्यम से इस गायन को सुर संगीत प्रदान किया जाता है। ढोलक विशेष रूप से प्रयुक्त होने वाला वाद्य है।

फाग मूलतः फागुनी गीत है। इनका गायन ऋतु विशेष में ही होता है। वह ऋतु है बसंत। माघ मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी (बसंत पंचमी) से लेकर चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी (शीतलाष्टमी) तक इन गीतों का गायन होता है। कुछ क्षेत्रों में रामनवमी तक, कुछ क्षेत्रों में पूरे चैत्र मास तक तथा कतिपय स्थानों में वैशाख तक इसके गायन की परम्परा है। गायन का प्रारम्भ बसंत पंचमी से ही सर्वत्र होता है। जब 'बसंत के ढाह' गड़ जाते हैं– 'गड़िगे बसंत के ढाह, बिना होली तापे न जाबै।

अवधी फाग गीतों की कुछ क्षेत्रगत विशेषतायें भी हैं। चौताल और डेढ़ताल नामक भेद प्रायः पूर्वी अवधी के जनपदों (फैजाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि) में प्रमुखता के साथ गाये जाते हैं। अवधी का बैसवारा क्षेत्र फाग साहित्य की दृष्टि से बहुत समृद्ध है। विशेष रूप से रायबरेली और उन्नाव जनपद में आधुनिक मनोरंजन के साधनों के होते हुए भी आज धमार, लेज, चहली का गायन उसी प्रकार होता है, जैसा आज से सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले होता था। उन्नाव जिले के रावतपुर और रायबरेली के बन्नावाँ ग्राम में आज भी फागुन में कई–कई दिनों तक फाग–गायन की प्रतिस्पर्धायें होती हैं। दूर–दूर से फाग–गायकों की टोलियाँ वहाँ आती हैं और आपस में एक होड़ सी लग जाती है। बाराबंकी जनपद के नरौली गाँव में सभी प्रकार के फागों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष शीतलाष्टमी के दिन फाग–गायन प्रतियोगिता सम्पन्न होती है। इसी प्रकार हैदरगढ़ की लोक–सांस्कृतिक संस्था अवध भारती समिति द्वारा फाग गायन की प्रतिस्पर्धा आयोजित होती है।

अवधी फाग साहित्य की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है, किन्तु सांस्कृतिक क्षरण के इस युग में इन गीतों के भविष्य और अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग गया है। सिनेमाई संस्कृति और इलेक्ट्रानिक मीडिया ने सबसे बड़ी क्षति लोकगीतों को पहुँचायी है। आज फाग गायकों को अभाव होता जा रहा है। नयी पीढ़ी में न तो अभिरुचि है और न इसके गायन का शऊर। फाग मूलतः वाचिक परम्परा के अन्तर्गत लोकगायकों के कण्ठों में ही लिपिबद्ध है। यत्र–तत्र पुस्तिकाओं में ही कुछ गीत प्रकाशित है। अवधी में लोक साहित्य का एक अथाह सागर है। उसके फाग गीतों को संकलित करके प्रकाशित करने की आज आवश्यकता है। दूसरा एक महत्वपूर्ण कार्य है–इसकी गायन शैली को सुरक्षित रखने का। यदि गीत प्रकाशित भी हो गये, तो भी गायन शैली के अभाव में इनकी मौलिकता, प्रामाणिकता और उपादेयता संदर्भहीन हो जायेगी। अभी अवध क्षेत्र में अस्सी–नब्बे वर्ष तक के वृद्ध फाग गायक जीवित हैं, जो बड़े ओजस्वी ढंग से फागों का गायन करते हैं। उनकी गायन और शैली को सुरक्षित करना बहुत आवश्यक है। आवश्यकता इस बात की भी है कि इस विधा को जीवन्त बनाये रखने के लिए फाग गायन प्रशिक्षण केन्द्र खोले जांये, जिससे इस विधा में रुचि रखने वाले युवाओं को प्रशिक्षित किया जाये। बुन्देलखण्ड में ईसुरी के फागों को लेकर काफी कार्य किया गया है। अवध–लखनऊ मण्डल का फागोत्सव (17 मार्च, 1997) ने हमें आश्वस्त किया है। लगता है, इसके पुनरुत्थान की बेला सन्निकट ही है।

फाग के प्रकार

1. **होरी**–यह होली का बिगड़ा रूप है। इन गीतों को स्त्री प्रधानगीत कह सकते हैं, क्योंकि इनका गायन स्त्रियाँ ही करती हैं। एक स्त्री गीत की कड़ी प्रारम्भ करती है, अन्य उसका अनुकरण करती हैं। ये गीत श्रृंगारिक, भक्तिपरक तथा लोक सांस्कृतिक भावना से ओत प्रोत होते हैं। एक नमूना द्रष्टव्य है –

   गड़िगै बसन्त के ढाह, बिना होली तापै न जाबै। गड़िगै।
   पहिली अनउनी ससुर मोर आये
   ससुर लौटि घर जाब, बिना होली तापै न जाबै। गड़िगै।

2. **धमार** – जहाँ होरी स्त्री प्रधान गीत है वहीं 'धमार' पुरुष प्रधान गीत हैं। इसमें लय–ताल का विशेष ध्यान रखा जाता है। गायक एक ही कड़ी को निर्धारित ताल पर अलग–अलग लयों में गाते हैं। ध्रुपद की भाँति धमार गायन में भी

दून, तिगुन, अथवा चौगुन, आड़, कुआड़, अनागत आदि विभिन्न लयकारियों का चमत्कार देखने को मिलता है। एक प्रचलित धमार है –

अवध मा होरी राम मचाई। अवध मा.।
महाराज सिरताज भूपमनि दसरथ सुत रघुराई। अवध.।
राम, लखन, भरत, सत्रौहन जोड़ी अतुल बनाई। अवध.।

3. **चौताल** – फाग गीतों का पर्याय है चौताल। गाँवों की चौपालों में ''ढोलकिहा'' विशेष चार ताल पर चौताल को गति देता है। दो वर्गों में गायक दल विभाजित होकर लोकवाद्य बजाते हुए सुलतानपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, बाराबंकी, बहराइच आदि जनपदों में प्रमुखता के साथ इन्हें गाते हैं। इसका छन्द देखिए –

लिखि पठवौ पिया का संदेश जोबन उठि आये।
ये दोउ बधिक उठे छतियन पर धनुहा बान चलाये।
करकत अंग तीर सम लागत नित–नित चोलिया मसकाये

4. **डेढ़ताल** – चौताल, डेढ़ताल और ढाईताल एक ही शैली के फाग हैं, किन्तु इनके आकार क्रमशः विस्तृत होते जाते हैं। डेढ़ताल की मुख्य पंक्ति (कड़ी) तीन बार यति लेने से पूरी होती है। उदाहरणार्थ –

इत उत से सखी आती,
शिव पूजन को चली जाती,
आजु शिवराती।

5. **ढाईताल** – इसका आकार डेढ़ताल से भी बड़ा होता है। इसकी एक कड़ी पाँच बार यति लेने से पूरी होती है। जैसे–

यह नर तन पायौ,
वृथा ही गँवायौ, सफल न बनायौ,

6. **उलारा** – धमार, चौताल, डेढ़ताल और ढाईताल के गीतों के गायन में लगभग आधे घण्टे का समय लगता है। गीत समाप्त होने के पश्चात् और प्रारम्भ होने के पूर्व का जो अन्तराल होता है, उसमें रसपरिवर्तन की दृष्टि से इस गीत को गाया जाता है। इसका आकार लघु किन्तु चुटीला होता है। यथा –

सइयाँ न आये भवनवा हमारे,
बैरी फागुन नगिचावा है।
किहौ करार बसंत का अउबै,
तुम्हरी सेजिया प धूम मचउबै।
सो सब भूलि गयौ मन मोहन,
बैरी फागुन नगिचावा है।

7. **कबीरा–जोगीरा** – कुछ लोग जोगीरा स रा र र र ''भैया सुनिलेव मोर कबीर'' और ''कबीरा अ रा र र र'' गाते हुए टोलियों में घूमते हैं। नाथ पंथी साधुओं के प्रश्नों को जोगीरा और कबीर पंथी निर्गुणियों के उलार को कबीरा कहते हैं। काल प्रवाह में जोगीरा और कबीरा लोकजीवन के अभिन्न अंग बन गये, और इन्हें एक विशेष लय भी दी गयी। यद्यपि इनमें अश्लील भावों एवं फूहड़ शब्दावलियों का समावेश हो गया है, फिर भी इनमें लोक जीवन का मधुरस प्रवाहित है। एक बानगी–

अल्हरी के पतवा पै बैठी है बउका,
हम जानि गयेन भउजी तू देबू धोखा।
महुवा कुचान बात हइयइ नाहीं।
जोगी नचावैं जौगी हइयइ नाहीं।
जोगिन खोजै चली जा जोगीरा स रा र र।

8. **लेज** – यह फाग की एक विशिष्ट गायन पद्धति है। इसमें मात्र 2–3 पंक्तियाँ होती हैं जिन्हें अनेक प्रकार के स्वर लय ताल के साथ पुनरावृत्ति करते हुए लगभग 10 मिनट तक गाया जाता है। स्वरावरोह इसका वैशिष्ट्य है। इसका मंगलारम्भ कोई एक गायक करता है। दूसरे उसकी अनुवर्तिता करते हैं। वाद्य रूप में ढोलक, मृदंग, झाँझ, डफ आदि का प्रयोग होता है।

यह गायकी वैसवारा (रायबरेली, उन्नाव) में विशेष प्रचलित है। कुछ उदाहरण –

दया करो भोले भाले भोलानाथ
आरत हरन सरन सुख दायक चरन कमल मम माथ।
गणपति वन्दना के रूप में लोकप्रिय पंक्तियाँ हैं –
शंभु सुत सुनहु विनय यकु मोरि।
मोरी विनय श्रवन करि लीजै कहत दोऊ कर जोरि।

9. **चहली** – मध्य अवधी (बैसवारी) का यह एक विशिष्ट फाग गीत है। इसमें उमंग–उल्लास का स्वर अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त होता है। पौराणिक प्रसंगों के साथ जुड़कर चहली और चहक उठती है। इन पंक्तियों में देखिए स्वयंवर में पदार्पण करती हुई जानकी का सौन्दर्य–सौकुमार्य किन शब्दों में अंकित किया गया है ?

तनक मग धीरे चलो सुकुमारि
न बाजै तोरे पायल की झनकार।
राजा दशरथ के पुत्र खड़े हैं तिरछे रहे हैं निहार।।

निम्नलिखित 'चहली' गीत में मिथिला नगरी के लोकमन की सुन्दर झाँकी है। राम–लक्ष्मण नगर–दर्शन के लिए निकले हैं। उनका रूप निहारते हुए सब नर–नारी मोह–मुग्ध हो उठे हैं। एक वृद्धा अपनी युवा बहू से कह रही है कि मैं भी इन राजकुमारों को देखना चाहती हूँ, किन्तु शरीर में चलने की शक्ति नहीं है, काश! तुम मुझे गोदी में उठा लेती–

लइगे मन फुसिलाय अवध के वे छैल बाँके
एक अरजु सुनि रनिया जी मोरी कनिया माँ लेतू उठाय।
ई गलियन के छैल चिकनियाँ हमहूँ का लौतू देखाय।
मोर बल पौरुष थाके।। लइगे।।

अवधी की 'चहलियों' में श्रीकृष्णलीला की लीलामाधुरी बहुशः वर्णित है। कहीं बाल गोपाल की नटखट प्रकृति और वहीं उनकी बरजोरी। उदाहरणार्थ एक गोपिका का उपालंभ है –

जसोदा तेरो मोहन श्याम बकत व्रज जुवतिन तूल कलाम।
गूजरि ऊजरि जाति शहर सों आई हैं करन प्रनाम।

निम्नलिखित चहली में कृष्ण की रंग लीला का उल्लेख है –

आज व्रज वीथिन उड़त गुलाल।
पकरि पकरि गोपाल सबन के तिलक लगावत भाल।।

होली के उल्लास से जुड़ी हुई चहलियां अवधी में भरी पड़ी हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

श्याम जो फागुन मास न अइहैं तो हमका जियत न पइहैं।

इसी प्रकार एक और चहली द्रष्टव्य है, जिसमें राधा–कृष्ण की प्रेम माधुरी का उल्लेख है –

करौंदा की ओ छैंया छैंया, कान्हा उड़ाय लिहे जाय।
राधा जी तुम बड़भागिनी कौन तपस्या कीन।
तीन मुलुक दुनिया बसै सो तुम्हरे आधीन।

11. **अन्य फाग** – लघु आकार के कुछ अन्य अनेक फाग भी गाये जाते हैं, जो आकार में छोटे, मनोरंजक, सूक्तिपरक एवं उपदेशात्मक होते हैं। ये गीत हैं– मतवाला, रसिया, मनहरवा, बेलवरिया, चहाका, दो तल्ली आदि।

फाग का वस्तुपरक विभाजन

रामकथा विषयक फाग

अवधी के फाग गीत मुख्यतः रामकथा में केन्द्रित हैं। होली का प्रचार यों ब्रज भूमि में भी कम नहीं है, पर फाग का मूल केन्द्र अवध ही है। इसमें राम, कृष्ण, शिव, हनुमान आदि चरिताख्यानों के साथ अनेक पुराख्यान रचे गए हैं। पहले यह गीत जैनियों में प्रचलित रहा है। शायद तुलसी के प्रयास से इसे रामकथा में प्रवेश मिला है।

इस प्रसंग में रामचरित विषयक फाग अवलोकनीय हैं। ये फाग रामजन्मोत्सव के हर्षोल्लास से जुड़ गये हैं और सुखद आश्चर्य यह कि ये तुलसीदास के नाम से प्रचलित हैं। एक उदाहरण–

जहँ राम लिहे अवतार सुरन हरसायी।
अनँद बधाव अवधपुर बाजै सब सखि मंगल गाई।
बिप्र बोलाय के वेद विचारत कर कंचन देत लुटाई।।
भइ अति भीर धीर राजा घर राम देखन सब आयी।
राम का रूप कहँ तक बरनौ उपमा बरनि न जाई।
पुरबासी सब मगन भये हैं घर घर नाच कराई।
जह देखौ तहँ थेई थेई मानौ उतरि पुर आई।
धन्य कहौं तोहे मातु कौसिला, राम को गोद खेलायी।
धनि तुलसी, धनि–धनि राजा दशरथ, जिन राम लखन सुख पायी।।

धनुष यज्ञ विषयक फगुवा (चौताल) पर मानस की चौपाईयों का स्पष्ट प्रभाव है–

"सखि ये दोउ राज किसोर सभा में आये।।
राजा जनक परन यकु ठाना धनुवा देत धराये।
देस–देस के भूपति आये, धनुवा नहिं सकत उठाये।
उठे राम गुरु अग्या लइके धनुवा लेत चढ़ाये।
धरत, उठावत कोऊ नहि देखत, छनहीं में तोरि बहायें।।

इस होरी गीत में राम के पूर्व राग से प्रेरित सीता अशोक वाटिका में गौरी पूजा करती हुई जो मनोकामना कर रही हैं, उसका मनोवैज्ञानिक वर्णन हुआ है–

सिव पूजत हो गौरी पूजत जनक दुलारी, बैठी फुलवारी।
पाँचौ फूल पाँच बेल की पाती हो,
सीता हथवा में लीन्हें बाती, बैठी फुलवारी।
फुलवै टूरि सीता शिव जी को पूजइँ हो,
अब अच्छत मारी दुइ चारी, बैठी फुलवारी।।
अब शिव बाबा हो, अब शिव भोले, हँसले ठठारी, बैठी फुलवारी।।
जवन माँगन तुहुँ माँगो हो जानकी,
अब उहै माँगन हम देबई, बैठी फुलवारी।।
अब सिव बाबा हो, अब सिव भोले,
कब तक रहबै कुँवारी, बैठी फुलवारी।

सीता स्वयंबर भी इन फागों में वर्णित है। धमार की धुन में एक फाग अवध में तुलसी के नाम से प्राप्त हुआ है–

सिया डारै राम गले जैमाला।
दूलह तो श्रीराम बने हैं, लछिमन देवर सहिबाला।
समधिन तो बनी मातु कौसिला, दशरथ समधी महिपाला।।सिया.।।

जिनके सम्भु बराती आये, ओढ़े दिगम्बर म्रिगछाला।
तुलसी दास बलि आस चरन की, सुर बोले जै तेहि काला।। सिया.।।

इसी भाव का एक अन्य फाग अवध में गाया जाता है—

आजु अवध पुर होरी मोरे रामा।
होरी मोरे रामा बरजोरी मोरे रामा।
राम ख्यालै लछिमन ख्यालैं, ख्यालैं अवध के लोगई मोरे रामा।
अबीर गुलाल के बादर छाये, केसर कीच मचाई मोरे रामा।
बाजत ढोल मृदंग झाँझ डफ, हिलिमिल फागु रचाई मोरे रामा।

इस गीत में घटना नहीं, केवल दृश्य है। 'मोरे रामा' की एक टेक इसका वैशिष्ट्य है। चाचारि (धमार) की धुन में यह लोकगीत तो बहुत ही लोकप्रिय है—

होरी खेलैं राम मिथिलापुर मा।
मिथिलापुर की यक नरि सयानी, सीख देइ सब सखियन का।
बहुरि न राम जनकपुर अइहैं, न हम जाब अवधपुर का।।
जब सिय साज समाज चलीं, लाखों पिचकारी लै कर माँ।
मुख मोरि दिहेउ पग ढील किहेउ, प्रभु बैठउ जाय सिंहासन माँ।।
हम तो ठहरी जनक नन्दिनी, तुम तो अवध के राजन माँ।।
हम सिन्धु काटि नदी लै अइबै, घोरब रंग जहाजन माँ।।
भरि भरि पिचकारी रंग चलइबै, बूँद परे जब सावन माँ।।
केसर कुसुम, अरगजा , चन्दन, बोरि देउ एक ही पल माँ।।

यहां मधुरोपासना का स्पष्ट प्रभाव है। इसी से मिलती जुलती होली अवध की है। उमंग उल्लास यहां अपनी चरम सीमा पर है। समूह नृत्य के रूप में यह लोकगीत सचमुच बड़ा सम्मोहक है— राम वनगमन विषयक फाग चौताल—डेढ़ताल में गाए जाने वाले इस फाग में—

तुम कहत ललन, बनवास चलन,
जीबै केहि भाँति, तुम्हैं बिन प्यारे।
होत बिकल मन मौंहि बिचारे।
सहि न जाय दुख दुनौ प्रकारे।
नैना बहुत जलधारे। तुम्हैं बिन प्यारे।।1।।
एक सोच हमरे उर भारी।
जनक लली सजी संग तयारी।
संग जइहैं लखन। तजि देहैं भवन
होइहैं पुर लोग दुखारे। तुम्हैं बिन प्यारे।।2।।
कर मींजत पछितात भुआला।
पुरबासी सब भये बेहाला।
होनी टरै नहि टारे। तुम्हैं बिन प्यारे।।3।।
जेहि दिन राम धाम तजि अइहैं।
काल समान अवधपुर होइहैं।
राजा पड़े हैं अँगन, मुँह आवै न वचन।
मनौ चलन चहत सुरधामे। तुम्हैं बिन प्यारे।।।4।।
बार—बार जननी उर लाई।

प्रेम प्रभाव बरनि नहिं जाई।
तुम आओ सुवन। करौ असुर दमन।
सुर सेवत बन्दी मझारे। तुम्हैं बिन प्यारे।।5।।

हे विधि, काइ कीन मैं बामा।
चउथे पन पायेउँ सुत रामा।
लिख्यो बियोग लिलारे। तुम्हैं बिन प्यारे।।6।।

इस फाग में मानस की कई पंक्तियां झंकृत हो रही हैं। लोक तथा शास्त्र का श्रेष्ठ समन्वय है इसमें। इस गीत में राम का सहज रूप अंकित हुआ है। सीता जगज्जननी तो हैं ही पर पहले गृहिणी हैं, अन्नपूर्णा हैं, और रसोई चलाती हैं। लछिमन बैठकों की शोभा हैं। संयुक्त परिवार की मर्यादा के संवाहक हैं चे चारों भाई। विशेष मार्मिक स्थल है वर्षा ऋतु का दृश्य चित्र घोरवृष्टि हो रही है। तीनों वनवासी किसी पेड़ के नीचे खड़े भीज रहे हैं। यहां भगवत्ता नहीं, सहज मानवता मुखरित हुई है। यह लोकगीतों का अपना वैशिष्ट्य है। माता कौशिल्या की चिंता है कि भूख प्यास लगने पर मेरे बच्चों को भोजनपानी कहां से मिलेगा ? कितना बेधक यथार्थ है इन गीतों में–

बन चले दूनौ भाई, कोऊ समुझावत नाहीं।।
आगे–आगे राम चलत हैं पीछे लछिमन भाई।
तेहिके पाछे मातु जानकी सोभा बरनि ना जाई।।
भूख लगे भोजन कह पइहैं प्यास लगे कहें पानी।
नींद लगे डासन कह पइहैं कहत कौसिल्या माई।।

इसी भाव का एक अन्य रूपान्तर है–

निकरि गये दोउ भाई। बन का निकरि गये दोऊ भाई।
आगे–आगे राम चलत हैं पाछे लछिमन भाई।
तिनके पाछे मातु जानकी सोभा बरनि न जाई।।
राम बिना मोरी सूनी अजोध्या, लछिमन बिनु चौपाई।
सीता बिना मोरी सूनी रसोइया, भोजन कउन बनाई।।
रिमझिम–रिमझिम मेहा बरसै, रैन बढ़ै अधियारी
कउनो बिरिछ तरे भीजत हुइहैं, राम–लखन दोउ भाई।।

रामकथा में अत्यधिक मार्मिक प्रसंग है सीताहरण और जटायुवध का। यों केवटप्रसंग, बालि सुग्रीव संग्राम, चित्रकूट मिलन, अहल्या उद्धार, शबरी आतिथ्य, विभीषण शरणागति, रामराज्य, सीतानिर्वासन आदि वृत्तान्तों पर बहुत साहित्य रचा गया है पर फाग गीतों में इनका बाहुल्य नहीं है। जटायू वध का यह वर्णन अवश्य बड़ा ओजस्वी है–

रथ सों निरखत जात जटाई।
विप्र रूप धरि आयो निसाचर देव देव गोहराई।
लै कै भिक्षा निकरी जानकी रथ पर लेत चढ़ाई।।
रथ पर व्याकुल भई जानकी शरण शरण गोहराई।
है कोई जोधा रामादल मौं हम का लेत छोड़ाई।।

इसी प्रकार निम्नलिखित फाग में लक्ष्मण मूर्च्छा प्रसंग अंकित किया गया है –

अब मोरी बाँह पवनसुत टूटी।
अवधपुरी मा सोर भयो है ह्वै गयो लंक में लूटी।।
सकति बान लागा लछिमन के, सीता असुर घर घूटी।
जौ सुनि पइहैं मातु सुमित्रा, खाई मरै विष बूटी।
को जावै द्रोनाचल परबत, को लै आवै संजीवन बूटी।

परबत दूरि रैन रही थोरी, लछिमन नारी छूटी।
अंजनि नाउ बालि कर बालक, बात कहत इक छोटी।
तुलसिदास अंजनि के नंदन, लइ आये संजीवन बूटी।।

स्पष्ट है कि राम के प्रति भक्तिभावना इन गीतों में प्रभूत मात्रा में विद्यमान है।

कृष्ण लीला विषयक फाग

अवधी फाग गीतों का सर्वाधिक संबंध कृष्ण कथा से है। श्रीकृष्ण लालित्य के देवता हैं। राधा रति भाव है। व्रजभूमि आनन्द भूमि है। रास नित्य विहार है। वंशी सम्मोहन तत्व है। सम्पूर्ण लीला महाभाव का रूपक है। बसंत और होलिकोत्सव के बीच यह भाव चरम सीमा पर पहुँच जाता है। फलतः प्रत्येक युवती गोपिका राधा और प्रत्येक किशोर कृष्ण की प्रतिच्छवि बन जाता है। साँवरा–साँवरिया शब्द प्रिय का और गोरी गोपिका की प्रतीक हो गयी है। इनके बीच वर्जनाएँ नहीं रह जातीं। भक्तिमत में रंग तो राग का व्यंजक है ही। होली मिलन पर्व है। इस बेला में सर्वांग समर्पण की आवश्यकता होती है। अरुण वर्ण अनुराग है, पीत वर्ण विसर्जन है, हरित वर्ण उर्वरता है, नील वर्ण रहस्यगोपन है। सबके समाहार से उज्ज्वल रस बनता है। इस रंग को चढ़ाने का उपक्रम है फाग। फगुहार इसमें डूबते हैं, दूसरों को डुबोते हैं और पूरे परिवेश को गोपीभाव से भर देते हैं। आरम्भ में प्रगाढ़ विरहानुभूति, फिर मिलन का उल्लास। फिर प्रबल मर्यादाबोध के विधि–निषेध से परे उठकर जैव धरातल से आनन्दमय कोश तक का संचरण। यह 'कृष्णाकल्ट' फाग गीतों में सहस्रमुखों से मुखरित होता है। इस फाग में देखिए–विरहिणी किस प्रकार व्रजराज की आकुल प्रतीक्षा कर रही है–

आय गयो ऋतुराज न आयो व्रजराज अली री।
जानि बसंत कंत नहि आयो पंथ विलोकि रह्यो री।
कोकिल कूक हूक सी लागति विरहा अगिनि दह्यो री।

फाग गीतों में कृष्ण जन्म की कथा विस्तारपूर्वक अंकित हुई है। विचित्रता यह कि इनमें सूरदास के कवि नाम की छाप है। इनके एकत्र संकलन, पाठ संपादन और प्रकाशन से हिन्दी की वृद्धि होगी–

बिरज माँ खेलत कुँवर कन्हाई।
प्रात समय जब कंसा जागा, पंडित का बोलवाई।
खोलि पत्तरा पंडित देखौ, अरथै अरथ बताई।
तुम तो कह्यो कि बालक होई कन्या कहाँ ते आई।।
खोलि पत्तरा पंडित देखैं, अरथै अरथ बताई,
बालक रह्यो सो गोकुल पहुँचा, यहिका करौ उपाई।।
लै वसुदेव चले गोकुल का, जमुना चरनन थाई
पाछे उनके सिंह दहाड़ै, प्रान बहुत घबराई।।
जाई के पहुँचे नन्द भवन मां, बालक दिह्यो सोवाई
सूरदास छबि कहाँ लग बरनौ, धन–धन कुँवर कन्हाई।।

कृष्ण कथा का एक मार्मिक प्रसंग है– गोवर्द्धनधारण का। इसमें वीर, रौद्र, करुण और भक्ति रस का अद्भुत समन्वय हुआ है। इस लोकप्रिय फाग से उक्त कथन की पुष्टि हो सकती है –

आज व्रज महाघटा घन घेरो।
इन्द्र ने हुकुम दियो मेघन को, करौ बिरज मा डेरौ।
गोकुल आजु बचै ना पावै करि डारौ जल धारो।।
महा प्रलय के मेघा छाये, ब्रज मा किह्यो बसेरो
मूसरधार परै जब लागी, हुइगा दिवस अँधेरो।।
ब्रजवासी व्याकुल निसि वासर, कृष्न कृष्न कहि टेरो।

गोपीनाथ राखौ यहि औसर, सव चितवै मुख तेरो।।
इतना सुन्यो जसोदा नन्दन, गोबर्धन तन हेर्‌यो।
लेत उठाय भूमि पर गिरिवर, हित सो पकरि उजेरौ।।
सूरदास वहि आस चरन की, बूँद न आवत नेरो।।

अवधी फाग गीतों में कृष्ण के वंशीवादन का वर्णन बहुशः प्राप्त होता है। लेज और चहली की इन दो पंक्तियों में दीर्घालाप द्वारा गायक मण्डली घण्टों तक जिस प्रकार मुरलीवादन सी करती रहती है– उसे एक विशिष्ट अनुभव ही कहा जा सकता है –

बेनु बन कुंजन बाजि रही।
धाई सकल बिकल ब्रजबाला छाड़्यो जात मही।
बँसुरिया बाजि रही नंद नन्दन कै।
यहि कै कान करति वा नर को ना कौने लरकै जरकै।

इन फागों में पारम्परिक कृष्णकाव्य के अनुरूप वंशी के प्रति गोपियों का सापत्न्य भाव व्यक्त हुआ है। कवि शिवरतन का रचित यह फाग विचारणीय है –

प्राण विकल करि दीन्हा, श्याम की विष भरि दीना।
वह हमरा जी हूकै जैसे शस्त्र नवीना।
ऐसी का डाइन दरद न जानै बिनु जल कैसी मीना
जबकी टेर सुनै बंशी की कान मान रचि दीन्हा
नींद न परै उझकि झकि बैठी कहत हमरो जिउ लीन्हा।
कहैं शिवरतन बाँस के बंसी हमैं बहुत दुःख दीन्हा।
काहू धरम सरम नहि इन्हहैं जाति छिपाए छिपीना।।

इन फाग गीतों की रचना अष्टछापी कवियों के द्वारा रचित 'भ्रमरगीत' की शैली में की गयी है। प्रायः वे ही प्रतीक हैं, वे ही विम्ब हैं और वे ही तर्क भी हैं –

बाँसुरी जिय जारै। छिनै छिन बन मां पुकारै।
कोउ न छीन लीन्ह हरिकर ते
सौतिन सौति बँसुरिया बैरिन आई ब्रज का उजारै।
यह मतिमंद कहा न मानै रहि–रहि प्राण निकारै।
करिकै अधर पान मोहन का अबलन का जिय जारै।
यहि चंदन कै बीच नागिनी रहि–रहि कै फुफकारै।
लै लै नाम पुकारत मोहन अबलन का जिय जारै।।

गोकुल क़ी होरी से संकलित फागों में कृष्ण के प्रति वात्सल्य, माधुर्य और सख्य के भाव एक साथ दिखायी देते हैं, यथा –

ब्रज माँ हरि होरी मचाई।।
इत सेनि आवति सुघरि राधिका उत सेनि कुँवर कँधाई।
हिलि–मिलि फाग परस्पर खेलैं सोभा बरनि नहीं जाई।।
नन्द घर बजत बधायी।।
राधे सयन दियो सखियन को झुण्ड–झुण्ड उठि धाई।
झपटि–लपटि गई स्याम सुन्दर से, बरबस पकरि मँगाई,
मनो नई नारि बनायी।।
बेंदी भाल, नयन बिच काजर, नक बेसर पहिराई।
पांवन नुपुर, कमर करधनी, सिर चुँदरी ओढ़ाई।

मनो नई नारि बनायी।।
सुसकत हौं मुख मोरि–मोरि कै, कहाँ गई चतुराई।
कहाँ गये तेरे नन्द बाबा जी, कहाँ जसोमति माई।
लला जी का लेत छोड़ाई।।
फगुआ दिहे बिन जाय न पइहौं, करिहौ कोटि उपाई।
लेहौं कसर चुकाय सब दिन को तुम बड़े चोर चबाई।
बहुत मोरा माखन खाई।।
बाजत झाँझ, मृदंग, ताल, डफ, मंजीरा, सहनाई।
उड़त गुलाल, कुमक, रंग, केसर, सोभा बरनि नहिं जाई।
मनौं मेघवै सरि लाई।।
खेलत गेंद गिरा जमुना माँ, किन मोरा गेंद चुराई।
हाथ डारि अँगिया बिच ढूँढ़त, एक गये दुई पायी।
मनो हमैं चोरी लगायी।।

फगुवा वर्ग द्वारा गाए जाते इस फाग लोकगीत में गोवर्द्धनधारण का वर्णन बड़ा ही रोमांचक बन पड़ा है –

पत राखौ सरन बलिहारी, गोबरधन धारी।।
कोपे इन्द्र बढ़े बिर्ज ऊपर घन घमण्ड है भारी।
बरसत मेह पवन अति डोलत, बिर्ज छाय लियत अँधियारी।।
एका सुनि संसार दुखित भये, दुखित भई घर नारी।
नयी–नयी नारी मनहीं दुखित भई, जे कोउ न रहत हितकारी।।
बोले श्रीपति सौचै गौरी मत, हम तुम्हारे हितकारी।
लिअइ उठाई गिरिवर नख ऊपर, जहाँ रच्छा करत हैं मुरारी।।

बरसाना–गोकुल–वृन्दावन सर्वत्र होली की धूम है। एक गूजरी की रस वेदना का इस फाग में देखिए कितना मनोबैज्ञानिक निदर्शन किया गया है –

बृन्दावन आजु मची होरी।
दधि बेचन को निकसी गूजरी पहिरे कर कंचन की जोरी
धरि पकरि लिह्यो चंचल अंचल मोहि बाँह पकरिकै लट छोरी
मैं छोड़ि दिह्यो ब्रज को बसिबो मोहि रारि साँवरे बरजोरी।।

दूसरी ओर गोपियाँ भी आक्रामक हो उठी हैं। उन्होंने कृष्ण को राधा के रूप में और राधा को कृष्ण के वेष में रूपान्तरित कर लिया है। सारूप्य मुक्ति और मधुरा भक्ति का अनन्य उदाहरण है यह–

होरी मा स्याम बने गोरी।
रंग भरी पिचकारी मारत, भरे अबीर की झोरी।
उड़त गुलाल लाल भये बादर, समझि न परत कहाँ गोरी।
बाजत ढोल मृदंग झाँझ डफ, गावत गोरी है होरी।
राधा स्याम, स्याम भये राधा, कैसी सुन्दर है जोरी।।

होलिकोत्सव का संबंध आराध्य के विभिन्न रूपों और विभिन्न केन्द्रों से है। आराध्य बलराम कृष्ण सुभद्रा रूप में है, सीता राम के रूप में हैं और शिव–पार्वती के रूप में हैं। इसलिए गया, अयोध्या, काशी सबका महत्व है –

सिर धरे मुकुट ख्यालैं होरी।
पहिली होरी गया मा खेल्यों गया गजोधर कै जोरी।
दुसरी होरी अवध मां खेल्यो राम लखन सीता जोरी।
तिसरी होरी काशी मां खेल्यो महादेव गौरा जोरी।।

इसी भाव की 'होरी' का एक अन्य पाठ भेद द्रष्टव्य है –

चलो देखि आई बरसाना जहाँ मची रंगीली होरी।
सिर पै मुकुट बिराजै, माथे तिलक दिहे आला।।
वृन्दावन की कुँज गली में, पकरि खेल्यैं नंदलाला।
फगुवा हमारा दीजौ, हँसि–हँसि के कहैं ब्रजबाला।।

अवध के फागों में भी रंग–राग का ऐसा ही चित्रण किया गया है, विशेषतः पुरुषों द्वारा गाए गए इस फाग में –

देखौ हम पै कान्हा गुलाल डारो रे।।
भरा कटोरा, रंग लाल, हाथ लिये नन्दलाल,
भरि पिचकारी मुँह पै मारी,
भीजी चूनरि सारी रे।। देखौ.।।
बरजि रहौ बरजो नहिं मानत,
लपटि अँग–अँगिया को फारि डारी रे।।
कइसेक करि घर अब जाँव सखी री,
देखतै सासू देइहैं हजार गारी रे।।

इस प्रकार सिद्ध है कि अवधी फाग कृष्ण कथा से अनुस्यूत है।

पौराणिक कथाओं पर आधारित फाग

अवधी फागों में रामायण, महाभारत में वर्णित वृत्तान्तों और पौराणिक आख्यानों की भरमार दिखायी देती है। भक्तिपरक गीतों में गजेन्द्र मोक्ष, द्रौपदी–रक्षा आदि के प्रसंग बहुशः व्यक्त हुए हैं, जैसे–

नाथ कैसे गज के फंद छुड़ायो।
गज औ ग्राह लड़ै जल भीतर दारुन द्वन्द्व मचायो।
गज की टेरि सुनी रघुनन्दन पाँय पियादे धायो।।
सेबरी के बेर सुदामा के तन्दुल रुचि–रुचि भोग लगायो।
दुर्जोधन घर मेवा त्याग्यो सागु बिदुर घर खायो।।

इस गीत में द्रौपदी की करुण पुकार पर द्रवित होकर नंगे पाँव दौड़ने वाले कृष्ण की भक्तवत्सलता का सुन्दर द्रष्टान्त है –

तुम बिन कौन सुनै बनवारी।।
कीना कपट आज दुरजोधन, खेल्यो पंसा सारी।
धन, धरनी औ माल–खजाना पांडु सुवन सब हारी।।
हारे चीर सभा माँ मेरी, हिरदै नाहि बिचारी।
अब दुस्सासन केस पकरि कै, खैंचत करत उघारी।।
भीखम, करन, द्रोन, कुन्तीसुत कोउ न सुनत हमारी।
बइठे हैं सब मौन साधि कै, चहुँदिसि चितै मैं हारी।। 3।।
हे जदुनाथ अनाथ आज मैं काहे कै सुरति बिसारी।

इतिहासबोध विषयक फाग

अवधी फागों में ऐतिहासिक तथ्य भरे पड़े हैं। 1857 के गदर को लेकर तत्कालीन हिन्दी कविता मौन है किन्तु बैसवारे के राणा बेनी माधौ की गुरिल्ला लड़ाई का विस्तृत वर्णन अवधी फागों में हुआ है। 1942 के किसान आन्दोलन की गूँज भी इनमें है। उन दिनों ये गीत गाँव–गाँव में लुक–छिपकर गाए जाते थे –

'सिर बाँधे कफनवा यार शहीदों की टोली निकली।'
मोरा रंग दे बसन्ती चोला।
टूटे न चरखा का तार चरखवा चालू रहै।

इन गीतों में तथ्यात्मक विवरण है, ओजस्वी (प्रेरणादायी) उद्‌गार हैं और व्यंग्य–प्रहार हैं। चरखा गीत में एक रूपक है। गाँधी जी दूल्हा बने हैं। नेहरू जी सहबाला हैं। ब्रिटिश सरकार दुलहिन है। थानेदार नौवा (नाई) का कार्य कर रहा है। ग्रामीणजन उन दिनों मुख्यतः पुलिस–प्रताड़ित थे, इसलिए थानेदार उनका विशेष कोप भाजन है।

राणा विषयक एक अन्य बहुचर्चित ऐतिहासिक फाग है –

'अवध मां राना भयो मरदाना।
बैस वंश बड़वाना।।
पहिल लड़ाई बक्सर मारयो सेमरी के मैदाना।
हुआँ ते मारत 'पुरवा' आये, तबै लाट घबड़ाना।।
कुटुम्ब कबीला सबै बोलायो सबका किह्यो परनामा।
तुम तो जाय मिल्यो गोरन मां, हमका हैं भगवाना।।
नक्की मिले, मानसिंह मिलिगे, मिले सुदरसन काना।
छत्री बीरू एकु ना मिलिहैं जिनके मन अभिमाना।।
झीलम बख्तर सबै मंगायो, घोड़ा मंगायो मनमाना।
सुमिरन करि दुर्गा का हिय मां, उत्तर किह्यो पयाना।।

स्पष्ट है कि इन फागों में इतिहास की गूँजें भरी पड़ी हैं।

अध्यात्म दर्शन और भक्तिपरक फाग

फाग गीतों में नीति और द्रष्टान्त के भाव भी मिलते हैं। कहीं–कहीं दर्शन की बारीकी भी आ गयी है, प्रायः रूपक के सहारे या प्रतीकात्मक शब्दावली द्वारा। उदाहरणार्थ यह गीत देखिए। इसमें स्थूल रूप से दुलहिनी की विदाई का दृश्य है, किन्तु प्रकारान्तर से यह दृश्य है महाप्रस्थान का –

करिबै कौन बहाना गवन हमरौ नगिचाना।
छोटी मोटी डोलिया चार कहरवा,
उतरे हैं माँझ दुवारे विदा कै माँगै गवनवा।।

इसी प्रकार निम्नलिखित फाग में पंचतत्त्व की चर्चा है। भवसागर की लोभ लहर में हम डूब उतरा रहे हैं, जबकि आवश्यकता है –पार जाने की –

मन तुम चले जाव हम जानी।
पांच तत्त्व का बना पींजरा तामे वस्तु बिरानी।
जो कोउ जावे लोभ लहरिया बूड़ि मरै बिनु पानी।।

स्पष्टतः इन गीतों में रहस्य, दर्शन, अध्यात्म की त्रिवेणी प्रवाहित है। उपदेशात्मकता भी इनमें बहुत प्राप्त होती है। यथा –

संतौ नदी बहै जलधारा।
जइसे जल मां पुरइन उपजै जल ही मां करै पसारा
वाके पात पानि नहि भीजै ढरकि परै जस पारा।।

जल में कमल की भाँति रहना ही जीवन की सार्थकता है। यह प्रबोधन इन गीतों का विशिष्ट प्रदेय है।

राम, कृष्ण, शिव, गणेश के अतिरिक्त अन्य देवी–देवताओं के प्रति भक्ति भाव फाग में व्यक्त किया जाता है। विशेष रूप से यह प्रबोधन दिया जाता है –

राम भजन बिसरायो विषै मां चित्त न लगायो।
बालापन लरिकन संग खेल्यो ज्वानी मां द्रव्य कमायो
बूढ़ भयो तन काँपन लाग्यो कोऊ सुनै न बुलायो।
नारद शेष गनेश शारदा, शंकर ध्यान लगायो।
उन रघुपति को निपट बिसरायो पूत कपूत कहायो।।
कहै शिवरतन चेत करु अबते जो बिगरी बनवायो।
एक दिन अंतकाल होइ जइहै नरक जइहौ मुँहबायो।।

इसमें मर्यादा भक्ति है और नीति–उपदेश का स्वर भी। यह संत काव्य की प्रवृत्ति है। एक और उदाहरण विचारणीय है –

रसना राम नाम रस पीजै
काम क्रोध मद मोह आदि रिपु प्रबल होन नहिं दीजै।
शांति शील संकोच सार गहि गहि सबको महि लीजै।।

फाग गीतों में शिवोपासना की भी गूँज सुनायी देती है। एक उदाहरण देखिए–

फागुन परी शिव राति, चलो सखि जल भरि लाई।
काहे की काँवरि, काहे की सीसी काहे का जल असनान।।
बाँसे की काँवरि काँचे कै सीसी, गंगा के जल असनान।
भाँग चढ़ाई धतूरा चढ़ाई बेल कै पाती चढ़ाई।।

इसी प्रकार हनुमान विषयक फाग गीतों को विशेष उमंग के साथ गाया जाता है। एक उदाहरण–

'अरे अंजनी सुत मेरे मन भायो।
कौन तुम्हारा नाम कहत है कौन पुरी से आयो।
कौने रजन की करत चाकरी काहे का तुम आयो
अंजनि सुत मेरो नाम कहत है अवधपुरी से आयो
राम की करति चाकरी लछिमन लागि सजीवन लायो
मूल पियत लछिमन उठि बैठे घर बैरी अलसायो।।

सामाजिक संचेतना से संयुक्त फाग

होली एक मिलन पर्व है। साल भर के बिछुड़े इस दिन मिलते हैं। जाति, वर्ण, स्तर और मर्यादाभेद को भुलाकर इस दिन परस्पर प्यार करते हैं। कोई विधि–निषेध बीच में नहीं आता। वर्जनाएं कुछ दिनों के लिए स्थगित– "यहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरौ।" बासंती बयार और मदनोत्सव संस्कार के कारण एक भिन्न कोटि का लोक व्यवहार इस ऋतु में होने लगता है। फागुन में बाबा भी देवर जैसे दिखायी देने लगते हैं। उर्वरता की प्रतीक भारतीय नारी के समस्त उद्दीपन मुखर हो उठते हैं। प्रकृति स्वतः ऋतुमती हो उठती है। देवर–भाभी, साली, सलहज, ननद, ननदोई, जेठानी–देवरानी अर्थात् समवयस्क संबंधियों में मधुरस स्रवित होने लगता है। यह मधुचर्या कृष्णलीला के बहाने तो फागों में फूट ही निकली है, इसने मधुरोपासना के बहाने मर्यादा पुरुषोत्तम तक को घसीट लिया है। अवधी फाग में सर्वत्र भरा पूरा संयुक्त परिवार दिखायी देता है– ससुर, जेठ, देवर, पति और अनेक पूज्य पुरुष। गृहवधू आज पर्दे के बाहर आकर सबसे होली खेल रही है। अन्तर स्तर का है। कहीं द्वार है, कहीं बरेठा, तो कहीं आँगन। पति के साथ की होली अपने रंगमहल में खेली जाएगी। यह है मर्यादित श्रृंगार–

बारह महीना कइ होरी, बिना होरी खेले न जइबै।
पहली होरी दुअरवा में खेल्यौं, अपने सुसर के साथ।
दूसरी होरी बरेठवा मौं खेल्यौं, अपने जेठ के साथ।
तिसरी होरी अंगनवाँ मौं खेल्यौं, अपने देवर के साथ।
चौथी होरी रंगमहल मौं खेल्यौ, अपने पिया जी के साथ।।
बिना होरी..।।

एक ही टेक को बार–बार दुहराते हुए उसमें विभिन्न पद/नामों को जोड़ते घटाते हुए ऐसे कई फाग प्राप्त होते हैं।

अवध की लोक संस्कृति के अनुसार सावन में नैहर और फागुन में पीहर। कन्यादान कर देने पर परायी हो जाने वाली अपनी दुहिता यों तो माता–पिता के पास आने के लिए हर समय हुड़कती रहती है, इसलिए भी कि संयुक्त परिवारों की सामंती व्यवस्था का दुर्वह बोझ शुरू में दूभर होता है। नैहर से वह थकान मिटा आती है। लेकिन इस लोक व्यवहार के विपरीत इस फाग में नववधू अपनी ससुराल में ही होली खेलने का आग्रह कर रही है। पति से एक विशेष प्रकार का आश्वासन पाकर वह तैयार होती है अन्यथा ससुर, जेठ, देवर, भाई सबको वह मना कर देती है। परिवार में उसका रुतबा कम नहीं है!

डोलत फागुनी बयार, अरे हम नइहर न जइबै।
पहिली अनउनी नउवा जो आये, नउवा लौटि तुम जाओ।
दूसरी अनउनी सुसर मोरे आये, ससुरौ लउटि तुम 'जाओ। ...
तिसरी अनउनी जेठ जो आवे, जेठो लउटि तुम जाओ। ...
चौथी अनउनी देवर जी आये, देवरो लउटि तुम जाओ। ...
पाँचवी अनउनी भइया जी आंये, भइया लउटि तुम जाओ।
ठेलि–ठालि जब डोली बइठन, चैत बीच बैसाख
घना तुम्हे आनन औबै।।

नववधू नैहर चली तो गयी पर यह प्रिय–वियोग सहा नहीं जा रहा है। इस चौताल में विरहिणी की यही व्यथा व्यक्त हुई है –

कइसे बितिहयँ फगुनवा हमारे।
सारी–सारी रात भवन के भीतर, निरखऊँ खोलि केवारे,
फागुन अंग उमंग जनावत, कर मलि–मलि रैन गुजारे।
किहे करार आवन की सजनी, सो पिया गजब बिसारे,
आस करत दिन रैन बितावत, दिल नहिं दरद बिचारे।
गावत फाग राग नर–नारी, बाजत ढोल सितारे,
सो सुनि सूल होत अतिभारी, चलत करेजवा पै आरे।
फागुन बिरथा जात अब बीता, आये न पियवा प्यारे,
ठाकुर हरिरतन बलम भये सपना, दूनौ जोबना भये मतवारे।।

यह व्यथा प्रवास विरह के कारण कई गुना बढ़ जाती है। प्रेषितपतिका अपनी तुलना सुहागिनियों से कर–करके विशेष व्यथित है –

बाउर कंत विदेश कोउ समुझावत नाहीं।
सबकी महलिया माँ दियना बरत हैं,
हमरे लेखे जग अँधियार।
सबकी महलिया माँ रंग उड़त हैं,
मोरे लेखे गलियां कइ धूरि।
सबकी महलिया में बाजा बजत हैं,
मोरे लेखे खंजड़ी–सितार।।

इन गीतों में अवध का एक अपना समाजशास्त्र दिखायी देता है। नायिका रोकना चाहती है, भाँति–भाँति के तर्क देकर, आशंकाओं के कारण। परदेशी पति को पत्नी जो प्रबोध देती है उसमें देश का सांस्कृतिक भूगोल दिखायी दे रहा है। उत्तरार्द्ध में सासु–बहू के सम्बन्धों का संकेत है। उन्मादिनी बहू ने हार तोड़ डाला है। सासु कोस रही है। पति/प्रिय आश्वस्त करता है, हार का मूल्य पाँच हजार दण्ड स्वरूप देकर –

साँवरा मोरी एकौ न मानी।
पूरब दिसा जनि जाओ रे स्वामी, हुँवना की नारि सयानी।।
राति सोवावत रंगमहल में, दिन माँ भरावत पानी।।
नारी–हमहूँ ते सयानी।
पच्छिम दिसा जनि जाओ रे स्वामी, हुँवना का लागुन पानी।।
पानी के लागे लउटि नहि अइहौं, हम धना होब परारी।।
सोवत रहिउं मैं रंगमहल माँ, पिया के गले लपटानी।।
टूटि गया मोरा लाख का हरवा, मोरे घर सासु रिसानी।।
बरै बहू अइसी जवानी।।
बइठी रही मैं रंगमहल माँ, हरवा का सोच करेरी।
हरवे के बदले मैं हरवा मँगइबै, पाँच हजार गुनहगारी।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि फाग गीतों में सशक्त सामाजिक संचेतना सुरक्षित है।

राग–रंग व्यंजक फाग

फाग का अंगीरस है संयोग श्रृंगार। बड़ा स्फीत राग तत्त्व। न कोई वर्जना, न आत्मवंचना। रूपदर्पिता नायिका एक ओर आत्मसचेत है –

'लइ लैबे ननद का साथ आजु पानी का अकेले न जइबै।'

पनघट लीला का मधुचर्या से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतः ससुर जी ने अपनी प्यारी, दुलारी बहू के लिए अँगना में कुंइया खुदवा दी है। सोने के कलश, रेशम की डोरी ही नहीं,कई–कई कहारों की व्यवस्था कर दी गयी है। इन कथारूढ़ियों और अभिप्रायों के बीच सन्निहित प्रणय भावना और सांस्कृतिक संचेतना अवलोकनीय है –

मोतियन मोरी माँग भरी, सासु पानी का पठवै।
अपने ससुर की बड़ी हौं दुलारी, अँगना माँ कुइयाँ खोदाई।
अपने जेठ की बड़ी हौं दुलारी, रेशम डोरि मँगाई।
अपने देवर की बड़ी हौं दुलारी, सोने का कलस मँगाई।
अपने सजन की बड़ी हौं दुलारी, सोरह कहार मँगाई।

विशेषतः उल्लेखनीय यह है कि लोकजीवन की यह नारी शोषित नहीं, बल्कि समादृत दिखायी देती है।

कुछ फागगीतों की श्रृंगारिकता 'वल्गर' भी हो गयी है। वस्तुतः पुरुष रचयिताओं (गायकों) का विपरीत लिंगीय आकर्षण यहाँ मुखर हो उठा है। सामंती सभ्यता से ग्रस्त भद्र समाज नारी को सभासुन्दरी के रूप में देखने का आदी रहा है। अवध क्षेत्र मे प्रचलित फाग–'लरिकइयाँ का प्यार' अथवा 'झमाझम बाजि रही पैंजनिया' अथवा 'चलौ चली अँटरिया ते भागि पिया' आदि इसी कथन के प्रमाण हैं।

इन गीतों से भिन्न निम्नलिखित फाग में देवर भाभी के आत्मीयता व्यंजक प्रगाढ़ राग रंग चित्रित हुए हैं –

आयू मैं हरि जी की चोरी, अरे देवरा रंग न डार्‌यो।
काहे के तोरे रंग बने हैं, काहे की पिचकारी।
अतर–गुलाब के रंग बने हैं, सोने की पिचकारी
भरि पिचकारी मोरे सम्मुख मार्‌यो, भीजि गई तन सारी।
सारी के बदले दुई सारी मैं दैहौं, पाँच रूपया गुनहगारी।
दहुरे देवर तोरी मुसकै बँधइहौं, बइठे विदेशी नहि अइहैं
काहेन का भउजी मुसकै बँधइहौं, एक कोख दुई भाई।।
यहाँ स्वच्छ श्रृंगार का स्वर मुखर हुआ है।

काव्य–कला–

फाग लोकगीतों का शास्त्रीय अध्ययन करने से रस–परिपाक, अलंकार निरूपण, छंदोविधान, भाषा वैभव, शिल्प–सौष्ठव आदि का वर्गीकरण किया जा सकता है, किन्तु वह सहज–स्वाभाविक न होगा। ये फागग़ीत स्थूलतः तीन प्रकार के हैं –

(1) लोकमानस द्वारा रचित

(2) लोककवियों द्वारा लिखित (3) प्रसिद्ध पदों से रूपान्तरित। लोकगीत शैली के फागों में प्रायः एक टेक के आवृत्तिमूलक पाठभेद प्राप्त होते हैं। प्रश्नोत्तर शैली के इन फागों में एक ही बात को प्रकारान्तर से कई सन्दर्भों में संजोया जाता है, जैसे –

प्रश्न–केहिके हाथ कनक पिचकारी केहिके हाथ अँबीरा।

उत्तर–राम के हाथ कनक पिचकारी लछिमन हाथ अँबीरा।

पूरा फाग इसी युगल–वंदी से ओतप्रोत रहता है। लोक कवियों ने फाग गीतों में प्रतीकों और रूपक, उपमा, द्रष्टान्त, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग प्रायः निरायास ही किया है। उदाहरण –

हम देखेन मदन गोपाल लाल संग बाल खिलै बृन्दावन माँ।
अलकैं घुघुँवारि लसैं बिकसैं मुख पंकज लाल कपोलन माँ।
कल कुंडन माँ लटकैं खटकैं जनु इन्दु अहीन के जालन माँ।
मुक्ता लसि लाल जवाहिर से जक से जल कुंज के मालन माँ।
बनमाल भली ललकै इतउत पटपीत परे अबतंसन माँ।।

अनुप्रास– छटा का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है –

रंग रच्यो कृष्ण गोकुल मइहा।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ और मंजीरा सहनइया।
है ढोल पखाउज संग बजे मुरचंग बाँसुरी सुरसैया।
इत धुधकत–धुधकत धृगत–धृगत धुम दुदुमुक दुदुमुक गिरकैंया।
उत घुमुक–घुमुक कै ताल उठै श्रीकृष्ण मचै दै फिरकैया।।
उठत तरंग तान की झुमकन नुपुर जेवर पैजनियां।
कोउ गावत ताल तान सुर साधे सरस राग की धुनि मइहाँ।
सुनि पंछी सोर मचाय रहे उड़ि जाय लसैं बिरछन मइहाँ।
बन की सब गउवैं मोहि रहीं छवि देखि मुकुट की परछइहां।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर रंग की सोभा अधिकइयाँ।
है ऐसो रूप कृष्ण राधा को देखि देवता हरखइयाँ।
आनन्द मगन फूलन बरसावत करत दण्डवत मन मइहां।
इत लछिमन लाल कहत होरी है धरे ध्यान हिरदै मइहां।।

'फाग' की संगीत साधना सर्वथा श्लाघ्य है। इसमें आलाप की आवश्यकता होती है। एक साँस में पूरा एक चरण कहना होता है, पूर्ण द्रुत, शार्दूल विक्रीड़ित की तरह। दीर्घ श्वास नीरोध के बिना यह सम्भव नहीं है। आवश्यकता है–

1. इसकी स्वरलिपियां बनवायी जाएं।
2. श्रेष्ठ गायकों से गवाकर इनके श्रव्य दृश्य कैसेट तैयार करा लिए जाएं।
3. संगीत निर्देशकों द्वारा इन्हें आधुनिक आर्केस्ट्रा के साथ भावाभिनय के साथ गवाया जाए।

प्रकाशक : **डॉ. ए. के. पाण्डेय,** क्षेत्रीय सांस्कृतिक अधिकारी, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र, 2-A, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ
मुद्रक : **शिवम आर्ट्स** निशातगंज लखनऊ । दूरभाष : 386389